क्या वृद्धावस्था अभिशाप है?

विश्वमोहन तिवारी

विचारणीय प्रश्न यह है कि हमें अपनी शारीरिक शक्तियों के क्षीण होने पर, अर्थात बुढ़ापे में, कष्ट तो हो सकते हैं, किंतु दुख क्यों? इसका उत्तर हमारी जीवन दृष्टि पर निर्भर करता है।

बुढ़ापा अर्थात बीमारियां, अस्वस्थता, कमज़ोरी, कष्ट तथा दुख! बुढ़ापे का कारण है इंद्रियों का, शरीर का तथा यौन शक्ति का कमज़ोर होना। उम्र तथा गरीबी इन कष्टों को और बढ़ाती हैं। अधिकांशतः बुढ़ापा कराहते, खांसते तथा दवाएं खाते ही बीतता है। विकसित देशों में औसत उम्र तो बढ़ रही है, बूढ़ों का अनुपात भी तेज़ी से बढ़ रहा है, मगर वहां के वृद्ध अत्यंत दुखी हैं। बूढ़े लोग अपना बचपन तथा यौवन ही याद करते रहते हैं। यदि वर्तमान की बातें करते हैं तब बीमारियों की बातें होती हैं। भविष्य की बात तो मृत्यु के अतिरिक्त शायद ही होती हो।

पहले मैं सोचता था कि बुढ़ापा तो प्राकृतिक नियमों के अनुसार डीएनए उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) के फलस्वरूप डीएनए के दुर्बल होने और उनके कारण कोशिकाओं के दुर्बल होने का परिणाम है। किंतु मानव विज्ञान में हुए नवीन अनुसंधान तथा विचार कुछ और ही कहते हैं।

हम 21वीं सदी से आशा कर रहे हैं कि उसकी प्रौद्योगिकी रोगों का अंत कर देगी। वह इंद्रियों को पुनर्जीवित कर सकेगी। 21वीं सदी में नैनो, संचार तथा जैव प्रौद्योगिकियों का महत्व बढ़ेगा। इनकी सहायता से शारीरिक श्रम की आवश्यकता और कम होती जाएगी। ज्ञान के द्वारा मनुष्य की उत्पादकता बढ़ती जाएगी। उस समय उसे कठिन श्रम के लिए रोबोट तथा कम्प्यूटरों की मदद मिल सकेगी।

स्टेम सेल द्वारा व्यक्ति के अंगों का निर्माण किया जाएगा। मस्तिष्क में स्थापित स्मृति चिप स्मरण शक्ति को कम्प्यूटर के बराबर कर सकेगी। मानव के लाखों जीन्स के 3 अरब रासायनिक अक्षरों का जिनोम नक्शा अब बना लिया गया है, तब उसके अनुसार चलने में कठिनाई ही क्या! अब आयुर्विज्ञान का स्वप्न है कि वह मनोवांछित मनुष्य पैदा कर सकेगा। एल्ज़ाइमर, पार्किन्सन, मधुमेह, हृदय रोग, गठिया और कैंसर जैसे असाध्य रोगों को जीन टेक्नॉलॉजी द्वारा निष्प्रभावी किया जा सकेगा।

किंतु तब भी वृद्धावस्था का अर्थ रोगहीनता नहीं होगा। क्योंकि बढ़ती प्रौद्योगिकी के कारण मिट्टी, पानी, वायु तथा आकाश का प्रदूषण भी भयंकर होगा जिससे नए-नए रोग पैदा होते जाएंगे। हम प्रौद्योगिकी को वरदान न बनाकर एक अभिशाप सिद्ध कर रहे हैं।

ज़रा पश्चिम की तरफ देखें। पश्चिम में भोगवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं। प्रसिद्ध कवि विलियम बटलर यीट्स की एक कविता है, लैण्ड ऑफ हार्ट्स डिज़ायर्स जिसमें बूढ़ों का दयनीय चित्रण है - वे धर्मभीरु तथा रूखे होते हैं; उनकी बुद्धिमत्ता चालाकी में ढल जाती है; वे कड़ुआ बोलते हैं। अतएव कवि ऐसा परी लोक चाहता है जहां बूढ़े ही न हों। अब्राहम लिंकन की प्रसिद्ध उक्ति है, *'ओल्ड इज़ गोल्ड'* किंतु ऐसे विवेकशील विद्वान वहां अपवादस्वरूप ही मिलते हैं। ब्रिटिश समाचार पत्र गार्जियन के सहायक संपादक मैलकम डीन कहते हैं, वहां एजिज़्म (उम्रभेद) नस्लवाद की तरह ही फैला है। एल्डस हक्सले ने अपने उपन्यास 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' में एक आदर्श

राज्य की कल्पना की थी जिसमें एक रसायन की मदद से मनुष्य को वृद्धावस्था के कोई कष्ट न होंगे! उसमें दूसरा स्वप्न है कि शराब कितनी भी पी लें, उससे हैंगओवर नहीं होगा! यह दर्शाता है कि पश्चिम में भोगवादी जीवन दृष्टि कितनी गहरी है।

भोगवादी तथा समृद्ध पश्चिम में अनुत्पादक वृद्धों की संख्या बढ़ने के फलस्वरूप 'वृद्ध-युवा अनुपात' कम हो रहा है जिसके कारण आर्थिक समस्याएं पैदा हो रही हैं। वहां वृद्धावस्था के शारीरिक तथा आर्थिक पक्षों को जितना महत्व दिया जा रहा है, उतना संवेदना पक्ष को नहीं दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी में अग्रणी तथा अति समृद्ध पश्चिम के अधिकांश समृद्ध वृद्ध भी संवेदनाशून्य जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त हैं, क्योंकि उनकी संतान उनसे वर्ष में एक-दो बार ही मिलने आती है। उनके मित्र, जो संख्या में कम ही होते हैं, बिछुड़ चुके होते हैं। यद्यपि वहां समृद्धि तथा ईमानदारी भारत से अधिक है फिर भी अधिकांश वृद्धाश्रम वृद्धों की समस्या से भरे पड़े हैं। प्रौद्योगिकी बुढ़ापे की बीमारियां कम कर सकेगी, अनंत सुविधाएं दे सकेगी किंतु वृद्ध मनुष्य को सुखी नहीं बना सकती क्योंकि वह मानवीय संवेदनाएं नहीं दे सकती। हम भी उसी भोगवादी दिशा में तेजी से जा रहे हैं।

अनेक युवा कहते हैं, 'हमारे माता-पिता ने हमारा लालन-पालन करके कोई एहसान नहीं किया; पैदा किया तो लालन-पालन भी करें, हम भी अपनी संतान का करेंगे। उन्होंने अपने बुढ़ापे का प्रबंध नहीं किया तो युवा वर्ग पर क्यों अपना बोझ लादना चाहते हैं! ज़माना बदल गया है, हम खेतिहर संस्कृति में नहीं रह रहे हैं। आज के जानकारी युग में बूढ़े लोग तो आउट ऑफ डेट हैं, अनुत्पादक हैं, उनका हमारे लिए कोई उपयोग नहीं है, वे अपना बुढ़ापा चाहे जैसे काटें, हमारे आधुनिक जीवन में अपनी अतृप्त इच्छाओं तथा दकियानूसी मान्यताओं के कारण बाधाएं न डालें।'

बुढ़ापे के डर में एक कारण उसका मृत्यु से निकट का संबंध भी होता है। मृत्यु के तीन सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं, उत्परिवर्तन संग्रह सिद्धांत, बहुप्रभावी जीन सिद्धांत तथा सीमित शारीरिक ऊर्जा सिद्धांत। किंतु मृत्यु के कारण समझने पर भी मृत्यु का भय तो बना रहता है।

यह विचारणीय है कि हमें अपनी शारीरिक शक्तियों के क्षीण होने पर, अर्थात बुढ़ापे में, कष्ट तो हो सकते हैं, किंतु दुख क्यों? इसका उत्तर हमारी जीवन दृष्टि पर निर्भर करता है। जिनके लिए जीवन का अर्थ ही इंद्रियों के द्वारा भोग है, वे इंद्रियों के क्षीण होने पर भोग नहीं कर सकते या भोग का आनंद नहीं ले सकते। अतः उन्हें जीवन निरर्थक लगने लगता है और वे दुखी होते हैं। जीवन में निरर्थकता का अनुभव मनुष्य को सेवानिवृत्ति पर भी हो सकता है, क्योंकि उसने नौकरी को ही जीवन का ध्येय समझ लिया था। बुढ़ापे का दुखद अनुभव उन लोगों को अधिक होता है जो भोगवादी हैं या जिन्होंने जीवन को विस्तृत दृष्टि से नहीं देखा है।

भोगवादी समाज में चूंकि बुढ़ापा अवांछनीय है, अतः बूढ़े भी अवांछनीय हैं। इंद्रियों तथा स्वास्थ्य के क्षीण होने के कष्ट की बनिस्बत अमानवीय या संवेदनाशून्य व्यवहार मनुष्य को कहीं अधिक दुख देता है। प्रसिद्ध अरबी दार्शनिक खलील जिब्रान ने इसे बहुत ही काव्यात्मक शैली में व्यक्त किया है: "मुझे केवल छत नहीं चाहिए, मानवीय शरण चाहिए।"

कोशिकाओं का समय के साथ क्षीण होना एक प्राकृतिक नियम है, और इसलिए बुढ़ापा भी एक प्राकृतिक नियम है। किंतु एक प्रश्न उठता है, क्या बुढ़ापे में जीना अनिवार्य है? शायद यह प्रश्न आपको विचित्र लगे, किंतु मनुष्यों के विपरीत, जानवर प्राकृतिक परिस्थितियों में बूढ़े हो ही नहीं पाते, क्योंकि शैशव के कुछ समय बाद उन्हें अपना भरण-पोषण स्वयं करना होता है। जैसे ही वे अपना भरण-पोषण और रक्षा करने में अक्षम होते हैं, जीवित नहीं बचते। यदि रक्षा और भरण-पोषण मिले तो वे अधिक जीवित रह सकते हैं। किंतु जानवरों के संसार में ऐसा होता नहीं। जानवरों की सीखने की क्षमता बहुत सीमित होती है अतः उन्हें सिखाने वाले की आवश्यकता थोड़े समय के लिये ही होती है । उनका जीवन जन्मजात क्षमताओं पर अधिक निर्भर करता है।

चिम्पैन्ज़ी मनुष्य का अत्यंत निकट सम्बंधी है। मादा चिम्पैन्ज़ी लगभग दस-बारह वर्ष की आयु से प्रजनन प्रारंभ करती है। उसका प्रजनन काल भी लगभग चालीस वर्ष की उम्र तक ही होता है। नर और मादा की अधिकतम आयु भी लगभग 40 वर्ष ही होती है (चिड़ियाघर में 50 वर्ष)। तुलना के लिए गौरिल्ला जो हमारा दूसरा निकटतम सम्बंधी है लगभग 35 वर्ष जीवित रहता है (चिड़ियाघर में 50 वर्ष)। अर्थात जैसे ही प्रजनन बंद हुआ, मादा की मृत्यु हो जाती है। लगभग इतनी ही आयु तक मानव स्त्री की भी प्रजनन क्षमता उत्तम होती है। तब क्यों मनुष्य इसके बाद चालीस वर्ष और जीवित रहता है?

मनुष्य के निकट सम्बंधी चिम्पैन्ज़ी और गौरिल्ला में 35-40 की उम्र में जैसे ही प्रजनन बंद हुआ, मादा की मृत्यु हो जाती है। लगभग इतनी ही आयु तक स्त्री की भी प्रजनन क्षमता उत्तम होती है। तब क्यों मनुष्य इसके बाद चालीस वर्ष और जीवित रहता है? मानव शास्त्रियों को इस प्रश्न ने बहुत परेशान किया है।

मानव शास्त्रियों को मानव में रजोनिवृत्ति (प्रजनन काल की समाप्ति) के बाद भी जीवित रहने के प्रश्न ने बहुत परेशान किया है। डार्विन के जैव विकास सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक जीव अपनी संतति की रक्षा और विस्तार करना चाहता है। दूसरे शब्दों में सभी के जीन्स अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहते हैं। अतः जीव जब तक जीवित रहता है संतानोत्पत्ति करता रहता है, क्योंकि जितनी अधिक संतान वह उत्पन्न करेगा, उसके उतने अधिक जीन्स के अगली पीढ़ी में पहुंचने की संभावना बढ़ जाती है। संतानोत्पत्ति बंद, तो उस पर प्रकृति के संसाधन खर्च करना व्यर्थ है। मनुष्य ही इसका अपवाद है।

मातृ सिद्धांत के अनुसार यह माना गया है कि मनुष्य की संतान पहले लगभग बीस वर्ष बेबस होती है या स्वतंत्र जीवन यापन के योग्य नहीं होती है, अतः मां का 40 की उम्र के बाद, बिना अपनी संतान पैदा किए, 20 वर्ष और जीवित रहना तो जैव विकास में तर्क संगत लगता है। किंतु मनुष्य तो 80-100 वर्ष तक जीवित रहता है, क्यों? बुढ़ापे के अनुत्पादक जीवन में वह संतान पर तथा प्रकृति पर बोझ बना रहता है। मातृ सिद्धांत वाले प्रश्न करते हैं कि जब मां अपनी संतान में अपने 50 प्रतिशत जीन्स भेज सकती है, तब वह अपनी नाती-नातिनों में 25 प्रतिशत जीन्स भेजकर ही क्यों संतुष्ट हो जाती है। इस प्रश्न की खोज में मानव शास्त्री लगे हैं।

इस दिशा में अच्छी प्रगति एक अवलोकन के बाद हुई। वृद्धावस्था विज्ञानी विलियम थामस लिखते हैं, "अफ्रीका के गाम्बिया की जनजातियों के अध्ययन में देखा गया है कि नानी की मददशुदा प्रसूतियों में शिशुओं के जीवित रहने की दर नानी की मददरहित प्रसूतियों की अपेक्षा 50 प्रतिशत अधिक थी।"

ऐसे अवलोकन औद्योगिक युग के पूर्व के कनाडा, फिनलैंड तथा अन्य स्थानों में भी किए गए हैं। अर्थात यह एक तथ्य है कि 80-100 वर्ष की उम्र तक वृद्ध मां न केवल अपनी संतान के जन्म तथा विकास में वरन संतान की संतान के जन्म तथा विकास में भी प्रभावी योगदान दे सकती है। गर्भावस्था तथा देखभाल आदि में मदद के अतिरिक्त आदिम कालीन नानी शिशु के लिए बेहतर भोजन का प्रबंध भी करती थी या करती है। इस तथ्य ने ग्रैण्डमदर परिकल्पना को जन्म दिया: यदि कोई मां 60 वर्ष की पूरी उम्र प्रजनन करती तो उसकी संतान की जीवित रहने की दर उतनी नहीं बढ़ती, न उसके जीन्स उतने फैल पाते।

स्त्री 40 वर्ष के बाद कमज़ोर होने लगती है जबकि संतान उत्पन्न करने के लिए स्वस्थ तथा सशक्त शरीर चाहिए। यह भी प्रमाणित तथ्य है कि चालीस की उम्र के बाद संतानोत्पत्ति समस्यामूलक होती है। अधिक उम्र में मां का गर्भ अक्सर गिर जाता है, शिशु मृत पैदा हो सकता है, जच्चा की मृत्यु भी हो सकती है। जब स्त्री 40 के बाद अपनी स्वस्थ संतान उत्पन्न नहीं कर सकती, तो वह

अपने नाती-नातिनों से संतुष्ट हो सकती है जिनमें उसके 25 प्रतिशत जीन्स हैं। और उस पर हो रहे संसाधनों का खर्च व्यर्थ न होकर डार्विन सिद्धांत के अनुकूल उपयोगी होता है।

केवल मनुष्य प्रजाति ही ऐसी है कि एक पुरुष अपने परिवार की आवश्यकता के अतिरिक्त अनेकों के लिए संसाधनों तथा सुरक्षा का प्रबंध कर सकता है। इसलिए वह भी चाहेगा कि उसकी स्त्री के साथ उसकी मां भी रहे ताकि उसकी संतानें अधिक जीवित रहें। यह एक मुख्य कारण है जिसके फलस्वरूप नानी-नाती, नातिन या दादी-पौत्र, पौत्री सम्बंध सुदृढ़ हो सका है।

चिम्पैन्ज़ियों और गौरिल्ला में जो शिशुओं के बीच का

रजोनिवृत्ति के बाद के चालीस-पचास वर्षों में ही मानवता के विकास का रहस्य छिपा हुआ है। वृद्धावस्था न होती तो हम 'बंदरपन' से आगे विशेष प्रगति न करते। वृद्धों के पास बच्चों को सिखाने के लिए समय तथा ज्ञान दोनों पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

अंतराल लगभग 5 वर्ष और मानव में लगभग डेढ़ वर्ष होता है। अन्य समानताओं के रहते, बच्चों के जन्म में इतना बड़ा अंतर क्यों? कारण यह लगता है कि चिम्पैन्ज़ी का शिशु लगभग 4 वर्ष की आयु तक मां पर निर्भर रहता है। मानव शिशु यद्यपि लगभग 20 वर्ष की आयु तक माता-पिता पर निर्भर करता है किंतु एक वर्ष की आयु के बाद जब वह ऊपरी भोजन करने लगता है, तब उसकी नानी या दादी उसकी देखभाल कर सकती है। इस तरह उस शिशु की मां अगले शिशु को जन्म देने के लिए तैयार हो जाती है। इस तरह बहुत कम 'लागत' पर एक महिला लगभग बारह-तेरह बच्चों को जन्म दे सकती है जबकि चिम्पैन्ज़ी और गौरिल्ला 3 या 4 को। ग्रैण्डमदर परिकल्पना की प्रवर्तक क्रिस्टैन हॉक कहती हैं, "जो गुण हमें कपियों (एप्स) से अलग करता है वह प्रजनन का काल का छोटा होना नहीं है। वास्तव में अंतर यह है कि अन्य प्रजातियों में वृद्धावस्था नहीं होती। कुछ विद्वान पूछते हैं कि 'मनुष्य इतनी जल्दी प्रजनन क्यों रोक देता है?' जबकि मैं कहती हूं कि अपने निकट सम्बंधियों की तुलना में हम लोग इतनी जल्दी प्रजनन नहीं रोकते हैं।"

मानव शास्त्रियों ने मानव विकास का अध्ययन करते समय एक तरफ दीर्घायु और संसाधनों की दक्षता, तथा दूसरी तरफ मनुष्य के दीर्घ जीवन, बुद्धि तथा आहार के पारस्परिक सम्बंधों का विश्लेषण करके पाया है कि 'ग्रैण्डमदर सिद्धांत' इस संदर्भ में भी खरा उतरता है। उदाहरण के लिए यदि मस्तिष्क को बड़ा होना है और शरीर के आकार और वज़न को कम से कम बढ़ना है, तब वजन कहीं-न-कहीं तो कम करना ही होगा है। कुल भार बढ़ता तो और अधिक भोजन की आवश्यकता होती जो उस समय के कठिन दिनों में संभव न हो पाता। मस्तिष्क के बढ़ने के साथ कुल वज़न का न बढ़ना तभी संभव था जब पेट का आकार और वज़न कम किया जा सके। उस समय मनुष्य का पेट बड़ा होता था क्योंकि घास के बीज जैसे कम ऊर्जा वाले आहार ही भरोसेमंद थे, शिकार करने में वह तब तक उतना सफल भी नहीं हो पाया था। पेट का छोटा होना तभी संभव था जब सभी मौसमों में ऊंची गुणवत्ता वाला आहार मिले, जिसे कम खाने से पर्याप्त ऊर्जा मिले। उत्तम आहार की खोज के लिए बुद्धि भी उत्तम चाहिए और सिखाने के लिए बुद्धिमान वृद्ध भी चाहिए।

नतीजतन मस्तिष्क का विकास तथा संतानों की परिवार पर निर्भरता की अवधि बढ़ी। इसके पहले महिला का शरीर पुरुष के शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा होता था, जैसे कि बीस लाख वर्ष पहले ऑस्ट्रैलोपिथिकस महिला का। यदि संतानों की संख्या बढ़ाना है तब मां के शरीर में शक्ति भी अधिक होना चाहिए। मां तथा नानी को भी बच्चों को गोद में लेकर चलना पड़ सकता है, अतः उनके शरीर को भी अधिक शक्तिशाली बनना है, जिसका विकास हुआ।

मेरी समझ में तो बड़े शरीर वाली महिला बड़े सिर वाले बच्चे को जन्म दे सकती है, जिससे शिशु का

मस्तिष्क भी बड़ा होगा। देखा जाए तो जन्म के समय सिर के आयतन की सीमा के कारण बच्चे का मस्तिष्क जन्म के समय मात्र 400 घन से.मी. का होता है, जो बाद में बढ़कर 1200 घन से.मी. हो जाता है। इस विकास में लगभग 15 वर्ष लगते हैं। इसके बाद उस युवा को उस मस्तिष्क का अच्छा उपयोग करना भी सीखना होता है।

केवल मनुष्य के शिशु की लंबे समय तक बिना संरक्षण तथा शिक्षा के जीने की क्षमता नगण्य होती है। यह भी मानव स्वभाव ही है कि वह गलतियां करते हुए ही सीखता है। यदि उसे गलतियों से सावधान करने वाला कोई न मिलता तब प्रत्येक शिशु वही गलतियां दोहराता, जैसा चिम्पैन्ज़ी करते हैं। अर्थात् उनका विकास और धीमे होता। उसे युवा होने तक संरक्षण तथा शिक्षा अनिवार्य होती है, और उसमें सीखने की क्षमता भी अनंत-सी होती है। यह शिक्षा अवश्य ही माता-पिता देने का प्रयास करते हैं, मगर उनके पास बच्चों के लिए पर्याप्त समय नहीं होता। किंतु ग्रैण्डमदर-ग्रैण्डफादर के पास शिक्षा देने के लिए समय तथा ज्ञान, दोनों माता-पिता से अधिक होते हैं जिससे उन बच्चों की जीने की संभावना तथा योग्यता कहीं अधिक बढ़ जाती हैं।

शिक्षा के साथ ही वे शिशुओं को प्रेममय वातावरण देते हैं जो उनके संवेदनात्मक विकास के लिये अपरिहार्य होता है। यह काम स्वयं वृद्धों को भी सार्थक लगता है। वे भी ऐसे प्रेममय वातावरण में रहते हुए तथा परिवार की मदद से लंबी आयु तक सुखी रह सकते हैं। मानवीय संस्कृति का और तदनुसार मानव का विकास वृद्धों द्वारा प्रदत्त ऐसी जीवन शैली से हुआ है। संस्कृति वृद्धों की मदद से हज़ारों वर्षों का उपयोगी ज्ञान जीवंत रखती है और समृद्ध करती रहती है, जिसकी मदद से मनुष्य तेज़ी से प्रगति कर सका है।

अब संक्षेप में दोहराने से यह सारी प्रक्रिया स्पष्ट हो

वृद्धावस्था में कष्ट तो होंगे, दुख होना ज़रूरी नहीं है। हमें तो वृद्धावस्था के वरदान पक्ष को देखना चाहिए। हम वृद्धावस्था को शानदार कहते हैं। जैसा कि महर्षि अरबिंद ने एक कविता 'सांझ' में कहा है:

एक सुनहरी सांझ,
जब सूरज ढल रहा होता है और अपनी तड़क-भड़क छोड़
शांत-मग्न होता है, ये
और विशाल शांत सागर।
ऐसी होती है घड़ी प्रभु के निकटतम होने की
जैसे वह भव्य बुढ़ापा !
जो लम्बे रास्ते पार कर आया हो।

सकती है। चिम्पैन्ज़ी के मस्तिष्क का आयतन औसतन 400 घन से.मी. होता है और वयस्क मनुष्य का 1200 घन से.मी., जबकि जन्म के समय मानव शिशु के मस्तिष्क का आयतन 400 घन से.मी. ही होता है। शिशु के मस्तिष्क के विकास का अर्थ केवल भौतिक बढ़त ही नहीं, वरन उस मस्तिष्क का सदुपयोग करने की शैली का विकास भी है। इस विकास का अर्थ है पहचानने, सोचने, खोजने और कार्य निष्पादन करने की शक्तियों का विकास। इन शक्तियों के विकास के साथ इनका उपयोग सीखने में तो और दस-बीस वर्ष लग सकते हैं। यदि किसी शिशु को आहार आदि तो दिया जाए किंतु समाज में रहने का तथा सीखने का अवसर न दिया जाए, तब बीस-पच्चीस वर्ष की आयु के बाद वह कुछ भी उत्कृष्ट सीखने के योग्य शायद ही रहे।

यदि ग्रैण्डमदर या अन्य सहायता उपलब्ध नहीं है तब मां दूसरा बच्चा तभी पैदा कर सकती है कि जब पहला बच्चा कम-से-कम अपने कुछ आवश्यक नित्यकर्म कर सके। भोजन मांग कर खा सके। खतरा होने पर चिल्ला सके आदि। अर्थात लगभग पांच वर्ष के बाद। इस तरह चिंपैन्ज़ी की तरह एक स्त्री भी बमुश्किल लगभग चार बच्चे ही पैदा कर सकेगी। और यदि उस समय की मृत्यु दर को देखें, तो शायद चार में से एक-दो बच्चे ही बच पाते होंगे, जिससे उनके जीन्स का प्रसार शायद ही हो

पाता। अब यदि ग्रैण्डमदर ज़िंदा है, तब वह बच्चों की अच्छी देखभाल कर सकती है और अगला बच्चा डेढ़ साल में आ सकता है, और एक स्त्री लगभग 12 बच्चों को जन्म दे सकती है, जिनमें से छह-सात बच्चे पूरा जीवन जी सकते हैं। ग्रैण्ड-पालक 50 वर्ष की उम्र के बाद तभी ज़िंदा रह सकते हैं कि जब उनकी साज-संभाल की जाए।

रजोनिवृत्ति के बाद के चालीस-पचास वर्षों में ही मानवता के विकास का रहस्य छिपा हुआ है। ग्रैण्डमदर के पास बच्चों को सिखाने के लिए समय तथा ज्ञान दोनों पर्याप्त मात्रा में हो सकते हैं। इस तरह बच्चों के केवल मस्तिष्क का विकास अच्छा होगा वरन उनका सामाजिक व्यवहार भी प्रत्येक पीढ़ी में बेहतर होता जाएगा। तब युवा बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में आत्मविश्वास के साथ इस कठिन विश्व में प्रवेश कर सकता है। यही संस्कृति का कार्य है जिसे वृद्धों ने संभव बनाया है। वृद्धावस्था न होती तो हम 'बंदरपन' से आगे विशेष प्रगति न करते। वैसे हममें से अनेक हैं जो अभी तक बंदरों से भी बदतर व्यवहार करते हैं।

देखा जाए तो ग्रैण्डमदर सिद्धांत मातृ सिद्धांत का विरोध नहीं करता, वरन उसे आगे ले जाता है। ग्रैण्डमदर का मूल सिद्धांत है कि स्त्री प्राकृतिक रूप में भी रजोनिवृत्ति की आयु से बहुत अधिक जीती है और संततियों की जीने की संभावना बढ़ाती है। इस तरह युवावस्था में प्रजनन तथा वृद्धावस्था में पौत्रों आदि की देखभाल तथा शिक्षा के कार्य का बंटवारा कर प्रकृति ने संसाधनों का बहुत उत्तम उपयोग किया है। अधिक शक्तिशाली व आक्रामक जानवरों के बीच रहते हुए मनुष्य की जीवन दर बढ़ाने में वृद्धावस्था का अहम योगदान है। यही ग्रैण्डमदर परिकल्पना की सफलता है।

इस संदर्भ में बूढ़े तथा वृद्ध में अंतर करना चाहिए। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्तियों का उम्र के साथ क्षीण होना बुढ़ापा है। वेद उसे वृद्ध कहते हैं जो युवा या बूढ़ा होते हुए भी वेदों का अध्येता है, ज्ञानी है। भारतीय मनीषा के अनुसार केवल सफेद बाल किसी व्यक्ति को वृद्ध की श्रेणी में नहीं रखते, वह तो बूढ़ा है। अरबिंद आश्रम की श्री मां कहती हैं, युवा होने का अर्थ है भविष्य में जीना। प्रगति ही यौवन है। हमारे वृद्ध अपने पौत्र-पौत्रियों के भविष्य के लिए जीते हैं। वृद्धावस्था के लिए ज्ञानी होना आवश्यक है जो उचित शिक्षा दे सके। हमारे संयुक्त परिवार में वृद्ध निरर्थक नहीं समझे जाते, वरन सम्माननीय होते हैं। इसका अर्थ होता है, कहानी आदि सुनाने के साथ प्रसन्न होकर सेवा पाना। आज तो यह और भी अधिक ज़रूरी हो गया है कि वृद्ध कम से कम अपने पौत्रादि को अच्छी कहानियों आदि के माध्यम से मानवता के संस्कार दें। इससे वृद्धों के जीवन में भी सार्थकता आएगी, उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा और उनका समाज में सम्मान भी। ***(स्रोत फीचर्स)***

शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए समान रूप से उपयोगी पत्रिका

एक प्रति 20 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क 100 रुपए।
ड्राफ्ट या मनीऑर्डर
एकलव्य
के नाम भेजें